

# एक स्कूल मैनेजर की डायरी के कुछ पन्ने-XIII

## कक्षा में सीखना-सिखाना (II)

फ़राह फ़ारूकी

इस किस्त में कक्षा से जुड़ी झलकियां पेश की गई हैं। यह दिखाती हैं कि आखिर कक्षा में क्या-क्या घट रहा है। आप पाएंगे की कक्षा की गतिविधियां किस तरह बच्चों को बस में करने की कोशिश ही महसूस होती हैं। बच्चों को जकड़ने-पकड़ने का एक सिलसिला-सा है जो सिर्फ टीचर से नहीं बल्कि पूरे शिक्षा-तंत्र से जुड़ा हुआ लगता है। कुछ हासिल करने की एक बेमक़सद दौड़-सी है जो सत्ता के इशारों पर दौड़ी जाती है। टीचर के काबू करने और बच्चों के बंदिश तोड़ने, शिकस्त न कुबूल करने की जद्दोज़हद के बीच कक्षा में बहुत कुछ होता है जिसकी तफ़सील यहां पेश है। कक्षा के दस्तूर-नियम, जिन्हें मज़हब की तरह मक़ासिद पर सवाल उठाए बग़ैर कुबूल कर लिया गया है जो बच्चों के दिलो-दिमाग़ पर काबू पाने के तौर-तरीकों या पैतरो को पैदा करते हैं।

यह ज़िक्र मैं पिछली किस्त में कर चुकी हूँ कि कक्षा के विभिन्न तथ्य और तफ़सील किस तरह जमा किए गए हैं। पिछले लेख में सामाजिक विज्ञान पढ़ाने के तरीक़े पर बात करते हुए तीन कक्षाओं की (कक्षा VII, VIII, IX) तफ़सील और विश्लेषण पेश किया गया था। मौजूदा लेख में पढ़ाई-लिखाई के इर्द-गिर्द हो रही गतिविधियों का जायज़ा लेने की इन्हीं तीन कक्षाओं में कोशिश है। जैसे: चैक करने-रखने के दस्तूर, ठोकना-बजाना-काबू पाना, मज़हबी पहचान की एहमियत वगैरा।

यहां मैंने जुर्म, मुजरिम जैसे अल्फ़ाज़ का इस्तेमाल सोच-समझकर किया है। हम ग़लती और जुर्म में फ़र्क जानते हैं, ग़लतियों को नज़रअंदाज किया जाता है या माफ़ किया जाता है, साथ ही सुधारने की कोशिश होती है। जुर्म करने वाले मुजरिम को समाज अकसर मुजरिम क़रार दे देता है और सज़ा से नवाज़ता है। सज़ा

बदलने-संवरने की मोहलत दिए बग़ैर काबू करने की कोशिश का एक नाम है। स्कूल के संदर्भ में, सज़ा जिस्मानी हो सकती है या फिर बच्चे के जज़्बात और एहसासात पर आघात करने वाली भी हो सकती है। कोशिश बस जिस्म, ज़हन और जज़्बात पर काबू करना ही होता है।

### ठोकना-बजाना-काबू पाना

स्कूल में, खासतौर से कक्षा के भीतर सज़ा को जायज़ क़रार देने का जवाज़ कई चीज़ों से जुड़ा है: कक्षा के दस्तूर-नियम के उल्लंघन से, इन बच्चों के 'माहौल' और गुर्बत से जुड़ी इल्म की एहमियत से, इनके मुक़ाबले में टीचर के रुख़े से, इन बच्चों में तरबियत और तहज़ीब की 'कमी' से।

बच्चे, खासतौर से हमारे मज़दूर बच्चे, तो सत्ता के सीढ़ीनुमा सिलसिले की सबसे कमज़ोर कड़ी हैं। आप तो जानते ही हैं कि बहुत से बच्चों के तो मां-बाप भी दिल्ली में नहीं रहते हैं। हमारे बच्चों की गुर्बत और तालीम की शदीद कमी, टीचर और स्कूल के तालीम बांटने से जुड़े रुख़े या हैसियत को और बढ़ा-चढ़ा देती है। यह तसव्वुर तालीम और सामाजिक गतिशीलता के बीच की एकतरफ़ा-सी समझ से जुड़ा है। तालीम की कमी के अलावा टीचर हज़रात को इन बच्चों में तरबियत और तहज़ीब की शदीद 'कमी' का एहसास भी है। कहना है, "ऐसे (ख़राब) माहौल से आते हैं, घर में कोई इन्हें तरबियत देने वाला, अच्छे-बुरे में फ़र्क बताने वाला, तमीज़-तहज़ीब सिखाने वाला तो है नहीं," इसीलिए यह ज़िम्मेदारी भी हमारे टीचर हज़रात ने अपने ऊपर थोप ली है। साथ ही कक्षा में चल रहे तालीम के बंटवारे में ख़लल डालने वाले बच्चे, सज़ा के मुस्तहिक़ तो हो ही जाते हैं। खैर, तहज़ीब जिसे टीचर अक्सर मोरल एजुकेशन का नाम देते हैं उसे चाहे जैसे बच्चों में उतारा जाए- ठोकना-बजाना सब जायज़ है। पढ़ाई के बीच में चल रही इस तानों-तिशनों भरी बातचीत, मारपीट को देखिए:

### लेखक परिचय

दिल्ली विश्वविद्यालय के लेडी श्रीराम कॉलेज में बीएलएड कोर्स से जुड़ी रही हैं। आजकल जामिया मिलिया इस्लामिया के शिक्षा विभाग में प्रोफेसर हैं और दिल्ली एजुकेशन सोसाइटी से संबद्ध हैं।

### 28.1.2014, कक्षा-IX, अर्शी मैम

- 1) सूफियान पास बैठे दूसरे बच्चे को लगातार मार रहा था। टीचर ने देख लिया और बोली, “तू तो कुछ काम वक़्त पर करेगा नहीं। खुद भी नहीं पढ़ेगा और दूसरे को भी नहीं पढ़ने देगा। दूर हो जा मेरी नज़रों से, कुत्ते जैसा हो गया है तू। चल जा पीछे बैठ जा, तेरी शक्ल अगर मुझे दिख गई तो मैं पढ़ाना बंद कर दूंगी।” बच्चा चुपचाप अपना बस्ता उठाता है और क्लास के पीछे, कोने वाले डैस्क पर सर नीचे करके बैठ जाता है।

### 25.07.2014, कक्षा IX

- 2) एक बच्चा डैस्क के बाहर पैर फैलाकर बैठा था।

ट: पैर को सिर पर रखकर बैठ जाओ। क्यों टोकना पड़ता है? पैर भी काट दूंगी। मैं भी अपने सिर पर रखकर बैठ जाऊँ, तब सही रहेगा?

### 03.02.2014, कक्षा IX

- 3) सिर्फ़ दसवीं पास वालों को ही सरकार नौकरी देती है, बाकी सब मोची और क़साई बनेंगे, इसीलिए कहती हूँ कि पढ़ लो।

### 03.08.2013, कक्षा IX

- 4) कक्षा की एक लड़की से स्कूल का ही कोई लड़का क्लास के बाहर मिलने आता है। जब वह वापस आती है: ट: तुम आजकल बड़ी चहक-चहक कर चल रही हो। अब्बा से बात करूँ?

### 20.07.2014, कक्षा VII

- 5) एक बच्चा सो रहा था।

ट: अरे उठो! घर पे सो जाया करो। चलो प्रश्न पढ़ो।

ब: लड़के-लड़कियों में अंतर बताना था।

ट: क्या लिखा बताओ?

ब: मैम, लड़ाई हो रही है पीछे।

ब: मैम, यह बार-बार साला कह रहा है।

ट: (दूसरे बच्चे से) सीट कहां है? सीट पर जाओ (दो थप्पड़ मारे) कान पकड़कर गुद्धी के पीछे लगा दूंगी (कान खींचते हुए)।

क्लास में किस वक़्त क्या हरकत चल रही है, इसका अंदाज़ा लगाना मुश्किल है इसलिए सज़ा, गाली-गलौज, ताने-तिशने का मुक़रर करना भी मुश्किल ही है। यह टीचर की अज़मत और बच्चों की किस्मत पर छोड़ दिया गया है कि टीचर उस वक़्त किसके साथ क्या सुलूक करें। अब सूफियान जैसा बच्चा अगर है, जिसका मुंह गुटके से लाल रहता है, पढ़ाई में पिछड़ रहा है, चाहे इसकी वजह गुर्बत के ढांचे हों तो हुआ करें लेकिन टीचर ‘कुत्ते जैसी शक्ल’ जैसा ताना देने की हक़दार तो हो ही गई। कहने का नाटकीय अन्दाज़ शहनशाह और गुलाम जैसा रिश्ता दर्शाता है। साफ़ महसूस होता है कि टीचर और बच्चों के बीच कुर्बत कम और फ़ासले ज़्यादा हैं। सज़ा का तय न होना जहां टीचर के हाथ और मज़बूत कर देता है, वहीं बच्चों को या उनकी हालात को ज़्यादा नाजुक बना देता है।

कई बार तानों के तीर, मार-पीट से ज़्यादा दर्द देते हैं। जैसे, ‘क़साई बनेंगे’- जैसा जुमला। जैसा कि मैं पिछले एक लेख में बता चुकी हूँ कि हमारे स्कूल के पास ही मोहल्ला क़साबपुरा है जहां गोश्त के कारोबार से जुड़े लोग रहते हैं। हमारे स्कूल में बहुत से बच्चे क़साबपुरा से आते हैं। यानी टीचर उन्हें ही ताना दे रही है कि जो ज़िन्दगी में कुछ करने के काबिल नहीं हैं वे क़साई जैसा ‘हिक़ारत-भरा’ काम करेंगे। गोश्त तो हम में से बहुत सों की तरह हमारी उस्तानी भी खाती हैं। लेकिन इस काम की एहमियत, क़साई के कारोबार से जुड़े मज़दूर बच्चों की मेहनत, कम मेहनताई, पुलिस की हेकड़ी जैसे मुद्दों से शायद वाकिफ़ ही नहीं हैं। वरना कारोबार को सामाजिक विज्ञान पढ़ाने का

चाहे ज़रिया न बनातीं, बच्चों को तानो-तिशनों से तो न नवाज़तीं। सोचिए, सामने जो क़साबपुरा के बच्चे बैठे होंगे, वह उस वक़्त कैसा महसूस कर रहे होंगे। शायद शर्मिंदगी या फिर गुस्से का एहसास होगा। साथियों, दोस्तों की मज़ाक और छेड़छाड़ भी सहनी होगी। बच्चों का गाली-गलौज करना, तमीज़ से न बैठना, लड़कियों का लड़कों से मिलना सब तहज़ीब के दायरे के बाहर की चीज़ें हैं। जहां टीचर इन्हें दायरे के भीतर धकेलना अपना फ़र्ज़ समझते हैं, वहीं यह भी कहना है कि बच्चे रफ़ता-रफ़ता क़ाबू में आ जाते हैं। अगर आप खुद बच्चों से बात करेंगे तो पाएंगे कि वे भी मानते हैं कि स्कूल ने उन्हें बहुत कुछ दिया है। चाहे इल्म हासिल करने और रोज़गार के मैदान में वह जहां भी हो, लेकिन रहने-सहने का तरीक़ा जिसमें ज़बान, शऊर, मिलने-मिलाने की तहज़ीब शामिल है, उनकी ज़िन्दगी में उनके हिसाब से स्कूल ही की देन है। सत्ता की कुर्सियों पर तशरीफ़ फ़रमा रहे लोगों की ज़बान और तहज़ीब से अगर अपनी तमीज़-तहज़ीब मेल खा जाए तो बड़ी बात है। यह हैसियत और रुत्बा तो बख़्शती है।

मारना-पीटना तो स्कूल के रिवाज का हिस्सा सा बन गया है। असातज़ा के हिसाब से यह बच्चों को भी उस हद तक कुबूल है जहां तक सज़ा और उनके जुर्म की नौइयत का तोल बराबर है। हमारी एक सीनियर टीचर के हिसाब से, 'गाजर के चोर को थप्पड़ की सज़ा।' यानी जुर्म अगर मामूली है तो सज़ा भी मामूली होनी चाहिए। बड़ी कक्षाओं में असातज़ा को थोड़ा मोहतात भी रहना पड़ता है। ऐसे केस भी रिपोर्ट किए गए हैं जहां बच्चा 'भड़क' गया है और उसने कहा है कि, "अगर मैंने किया होता तो ठीक था लेकिन मैंने, मैम, जब यह सब किया ही नहीं तो मुझे सज़ा क्यों मिले"। ग़ौरतलब बात यह है कि ऐसे वाक़िये जो मेरे सामने आए उनमें बच्चे का स्कूल और मोहल्ले में एक रुत्बा था। जैसे क़मर अब्बास हमारी बच्चों की काउन्सिल में भी था और उसका घर-ख़ानदान हैसियत वाला, पढ़ा-लिखा था। शायद इस वजह से उसमें आवाज़ उठाने की कुछ हिम्मत थी। बाकी बच्चे पटाखे फोड़कर, टीचर पर छोटे बम और चॉक फेंककर या आवाज़ें निकालकर काम चलाते हैं। कई बार कमज़ोर भी जुल्म नहीं सह पाते हैं तो भिड़ बैठते हैं। जैसे तालिब ने टीचर को धमकी दे डाली कि सौ नम्बर यानी पुलिस को फोन कर देगा। यह सुनकर मुझे हैरानी हुई क्योंकि इस बच्चे ने मेरे साथ नाटक में काम किया था। अच्छा तमीज़ का बच्चा है। लेकिन अगर लगातार बेइज़्जती और तौहीन हो तो बच्चे नहीं सह पाते हैं।

### 30.1.2014, कक्षा IX

नज़ारा:

सामाजिक विज्ञान का एक पीरियड आधी छुट्टी से पहले वाला होता है और दूसरा आधी छुट्टी के फ़ौरन बाद वाला। दूसरे पीरियड में बच्चे अचानक बढ़ गए थे। टीचर के आने से पहले भागा-दौड़ी बल्कि अफ़रा-तफ़री का आलम था। शोर तो दूर तक सुनाई दे रहा होगा - हर तरफ़ 'अबे' और 'ओए' की आवाज़ें थीं। आगे के दो डैस्क पर लड़कियां बैठी बातें कर रही थीं और भागते लड़के उन्हीं पर न गिर जाएं इसके लिए बीच-बीच में उन्हें पुकार रही थीं, "ऐई देखकर भाई"। कुछ लड़के डैस्क के बीच के रास्ते में एक-दूसरे के पीछे दौड़ रहे थे। क्लास के पीछे एक कोने में तीन-चार लड़कों के बीच लड़ाई या फिर खेल चल रहा था। उनमें से एक का बस्ता उछाल-उछाल कर खेल हो रहा था। इतने में टीचर, दरवाज़ा जो भिड़ा हुआ था, उसे खोलकर अंदर दाख़िल होती हैं। दरवाज़े का पट दौड़-भाग कर रहे एक बच्चे सूफ़ियान के लग जाता है। टीचर- "पढ़ाई-लिखाई तुम लोगों के बस की बात नहीं है, जूते बनाना तुम"। उन्हें ज़ोर से चिल्लाता देखकर बच्चे चुपचाप अपनी सीट पर बैठ जाते हैं। सूफ़ियान जाकर पीछे कोने की सीट पर बैठ जाता है।

अब जेलर की ग़ैर-मौजूदगी का कैदी फ़ायदा तो उठाएंगे। वैसे भी हमारे बच्चों के लिए स्कूल तालीम हासिल करने की और तहज़ीब सीखने की जगह के अलावा एक तफ़री की जगह भी है। अकसर बच्चों को मैदान में दौड़ते देखकर हमारी एक सीनियर टीचर कहती हैं, "ज़रा-ज़रा से दड़बों में रहते हैं, अच्छा है इनके हाथ-पैर तो खुल जाएंगे"। जहां तक जुर्म और सज़ा का ताल्लुक है, हमारा स्कूल बच्चों को बाहरी ज़माने के दस्तूर में ढालने की पुरज़ोर कोशिश करता है। यानी जुर्म को जुर्म जब ही क़रार दिया जाएगा जब मुजरिम पकड़ा जाए। कई बच्चे अकसर मजे में कहते हैं, "मैम,

वह लोग कर रहे थे, पकड़े हम गए।” या फिर, “मैम, शोर तो सब मचा रहे थे, बस मैम ने हमें देख लिया और पकड़ लिया।” इस तरह जो पकड़ा गया उसे मुजरिम करार दे दिया गया। यह सभी जानते हैं कि शोर-शराबे और ‘आतंक’ के लिए वह अकेला जिम्मेदार नहीं है। खैर, इस तरह कुछ देर के लिए सब डर-सहम तो जाते ही हैं, और ‘शान्ति’ कायम हो जाती है। चाहे इंसाफ़ हुआ हो या नहीं। क्या आपको भी मेरी तरह यह राज्य के शान्ति बरकरार करने के तरीके से मिलता-जुलता लगता है। जहां कोई वारदात हुई राज्य की पुलिस जो पहले सो रही होती है अचानक जाग जाती है और ऐलान करती है, “मुजरिम पकड़ा गया, डायरी जिसमें प्लान लिखा था, बरामद हुई।” अकसर मुजरिम मिस्कीन, ग़रीब मुसलमान भी होते हैं। या फिर कोई भी लाचार जो पकड़ा गया वह मुजरिम! पता नहीं मुसलमान होना ज़्यादा बड़ा जुर्म है या फिर मजबूर-ग़रीब होना। कक्षा में भी सूफ़ियान जैसे बच्चे ज़्यादा नज़र में आते हैं। भई, गुटका खाते हैं, यूनिफ़ार्म दुरुस्त नहीं होता बल्कि गन्दा रहता है, फ़ीस वक़्त पर नहीं देते और पढ़ाई की तरफ़ रुझान भी नहीं है। अब ‘कुत्ते जैसी शक्ल’ है तो पकड़े तो जाएंगे। हिमायत में कोई साथ देने वाला भी नहीं है। खस्ताहाल घर वाले दो रोटी कमाने की दौड़ में जो हैं। बच्चा खुद भी कारख़ाने में काम करता है। न तो स्कूल और न ही राज्य, ढांचों को कुसूरवार ठहराते हैं। ‘तन्हा-बेबस मुजरिम’ को पकड़ना, इल्ज़ाम देना इंसाफ़ मान लिया गया है। हाल में पता चला सूफ़ियान की हाज़िरी इस साल स्कूल में और कम हो गई है।

कई बार बच्चों की हिमायत उनके खिलाफ़ भी चली जाती है क्योंकि उनको ख़तावार और अपने-आपको इंसाफ़ का पुजारी साबित करने के लिए फिर सुबूत और गवाह इकट्ठे करने का सिलसिला शुरू हो जाता है। जैसे, हाल में पता चला कि हमारी सातवीं क्लास का एक बच्चा, इरशाद, किसी गहरे मानसिक दबाव में आ गया था। इसकी कई वजह ज़रूर रही होंगी। इस बच्चे को मैं कई साल से जानती हूँ, बड़ा ज़हीन और पढ़ाई का शौकीन बच्चा है। भाई के कारख़ाने में काम करता है और स्कूल में मेहनत कर रहा है। बीमार हुआ तो खुद दरखास्त लिखकर दोस्त के हाथ भिजवाई। क्योंकि उस पर मां-बाप के दस्तख़त नहीं थे और ख़राब से कागज़ पर लिखी थी, टीचर ने फाड़ दी। उसके बड़े भाई ने मुझे बताया कि मानसिक असंतुलन और दबाव के वक़्त वह यह ही दोहराता है, “मैम ने तो मेरी एप्लिकेशन भी फाड़ दी”। मैंने पहली बार गुस्से में आकर किसी टीचर से जवाब तलब किया। पहले तो उन्होंने कहने की कोशिश की कि वह बच्चों पर सख़्ती सिर्फ़ उनकी भलाई के लिए करती हैं। उनके भलाई के तसव्वुर का नमूना यहां पेश है:

नज़ारा:

*सीमाव मैडम की क्लास 9:45 की बजाय 10:00 बजे शुरू होती है क्योंकि बच्चों की क्लास टीचर सुषमा मैम बच्चों को फ़ीस न देने पर, कुछ को सही यूनिफ़ार्म न पहनने पर हाथ पर डंडी से मार रही थीं। कई बच्चों ने स्टाइल से बाल बनाने पर भी मार खाई। जिन्होंने जेल्ल लगाकर बाल बना रखे थे, उन्हें मारा और धमकाया गया कि कल से अगर उन्होंने ठीक से बाल नहीं बनाए तो वह खुद फ़ौजी कट की तरह काट देंगी।*

खैर, यह तो बच्चों के भले की बात हुई। वैसे, क्या आपने नोटिस किया कि टीचर हज़रात को न तो सूफ़ियान जैसे बच्चे भाते हैं, न ही जेल्ल लगाकर बाल खड़े करने वाले, बस कुछ अदृश्य से हों तो बेहतर है। भलाई के नमूने के बाद अब इरशाद की कहानी पर वापस आते हैं। सुषमा मैम ने बताया कि इरशाद की दरखास्त पर उसके वालदेन के हस्ताक्षर भी नहीं थे। उन्हें पता ही नहीं था कि उसके वालदेन बिहार में रहते हैं और बड़ा भाई लिख नहीं पाता है। फ़ोन पर इस बहस के बाद तो जैसे इरशाद पर तोहमत और इल्ज़ाम की बारिश-सी हो गई। बताया कि एक लड़की से इश्क़ फ़रमाने के मुजरिम हैं, उसे अपने पैसे जोड़कर मोबाइल भी ख़रीद कर दिया था ताकि बात कर सकें। मां-बाप ने उस बच्ची का दाख़िला किसी और स्कूल में करवा दिया इसलिए सदमे का शिकार हो गए। यह सुनकर मैंने जवाब दिया कि, “बच्चा इतने गहरे एहसासात और जज़बात से गुज़रा है, इसलिए उसे हमारी मदद और साथ की ज़्यादा ज़रूरत है। वैसे भी इस उम्र में लड़के-लड़कियों के बीच खिंचाव तो हो सकता है”। यहां मैं दो चीज़ों की तरफ़ आपकी तवज्जह चाहूंगी। एक सुषमा मैम और मेरे बीच के फ़ासले, तकल्लुफ़, मेरी सत्ता के एहसास के सामने अपने-आपको गैर-महफूज़ समझने में बच्चे को जुर्म की दलीलों के बीच जकड़ने का काम किया। लेकिन दूसरी तरफ़ कुछ हद तक

मेरी सत्ता की कुर्सी मुझे आख्यान तय करने में न सही, शुरू करने में तो मदद करती ही है। जैसे यौनिक आकर्षण को कुदरती एहसास की तरह कुबूल करना और इस बिना पर बच्चे को गुलत न ठहराना। तमाम ऊपर दिए गए नमूनों को देखकर आपको एहसास ज़रूर हुआ होगा कि एक आदर्श या 'अच्छे बच्चे' का तसव्वुर टीचर के दिमाग में है। बस उस पर बढ़ना स्कूली 'तालीम' का हिस्सा है, ज़रा फिसले तो काबू के दांव-पेच।

### फ़ासले और अलगाव

बच्चों को यह एहसास कि जिस पढ़े-लिखे वर्ग का प्रतिनिधित्व उनकी टीचर कर रही है वह उनसे बहुत फ़र्क, अच्छा और ऊंचा है, उन्हें हाशिये पर डाल देता है। कई बार इसकी वजह बस यही होती है कि टीचर को उनकी रोज़मर्रा की जिन्दगी और हकीकत का अन्दाज़ा ही नहीं होता। साथ ही अपनी मध्यमवर्गीय जिन्दगी के उसूल समझती हैं कि उनकी जिन्दगी के भी हैं। यह कहना कि अख़बार तो घर में आता ही होगा इसी तरह की उम्मीद से जुड़ा हुआ है।

#### 18.7.13, कक्षा VIII

ट: ...घर जाकर किताब के क्वेश्चन देखें। घर जाकर अख़बार पढ़ा? किसी ने कोशिश की? अरे कुछ तो बोलो। खादय सुरक्षा अधिनियम के बारे में पढ़ने को बोला था, पढ़ा? (सभी चुप रहते हैं) तुम्हारे घर में अख़बार आता होगा न? पढ़ा क्यों नहीं (फिर से बच्चे चुप रहते हैं) किसके घर में अख़बार नहीं आता?

ब: सभी हाथ उठा लेते हैं।

ट: पड़ोस में तो आता होगा, वहां से लेकर पढ़ना। किसके पड़ोस में आता है।

ब: दो हाथ उठाते हैं।

ट: अख़बार तो 2-3 रुपये में आता है, तुम खुद भी पढ़ सकते हो। ऐसे ही ले सकते हो एक-दूसरे से। चलो प्रश्न पढ़ो।

जिन बच्चों का तयशुदा घर और पता नहीं है क्योंकि कारखाने में रहते हैं उनके यहां सूरज का निकलना और डूबना तयशुदा काम और तरतीब से जुड़ा हुआ नहीं है। चाहे कमाऊ बच्चे हैं जिनके लिए रोज़ के 2-3 रुपये बहुत माइने नहीं रखते लेकिन सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य ऐसा है कि अख़बार जैसी चीज़ पर खर्च करने की बजाय कैन्टीन के समोसों पर खर्च करना ज़्यादा पसन्द करेंगे। एक और वजह है कि अख़बार जैसी चीज़ बच्चों की दिनचर्या का हिस्सा नहीं बन पाती। वह यह है कि अख़बार बड़ों या कारखानों के बड़ों की दिनचर्या या ज़रूरत का हिस्सा नहीं है क्योंकि ज़्यादातर लोग पढ़ना नहीं सीख पाए हैं। अगर होता तो बच्चे भी इससे फ़ायदा उठा पाते। हां, सामाजिक विज्ञान की टीचर रोज़ की एक या दो अहम ख़बरों का जायज़ा लेना अपनी कक्षा का उसूल ज़रूर बना सकती हैं, शायद बच्चों को इसका चस्का ही लग जाए।

#### 19.02.2014, कक्षा VIII, बाबू : कानून और सामाजिक न्याय

ट: चलो, बताइए कानून बनाना और चलाना अलग बात है या नहीं?

ब: येस मैम।

ट: बाल मज़दूरी पता है कि क्या होती है? अभी बताया था मैंने।

ब: 14 साल से कम बच्चे से काम नहीं करवाना चाहिए।

ट: अभी भी हम देखते हैं कि छोटे-छोटे बच्चे होटल में बर्तन धोते हैं। तो क्या यह कानून लागू हो रहा है?

ब: नो (No) मैम।

ट: कानून तो बना दिया है लेकिन वो लागू नहीं है।... लेकिन जहां कानून है और वो ठीक से लागू नहीं हो रहे हैं, वहां क्या है?

ब: अव्यवस्था

ट: स्कूल के कितने कानून बनाए गए हैं, लेकिन क्या होता है। हर पीरियड के बाद ट्यूब लाइट, डैस्क या फ़ैन कुछ न कुछ टूटा पड़ा होता है। कानून का जो उल्लंघन करते हैं उनके साथ क्या होना चाहिए?

ब: सज़ा मिलनी चाहिए।

ट: उल्लंघन मतलब?

ट: जो क़ानून को तोड़े। कानून का उल्लंघन करने वालों को क्या मिलना चाहिए?

सभी बच्चे: सज़ा

आप देख ही सकते हैं खुद मज़दूर बच्चों के सामने जिनमें से काफ़ी की उम्र 14 साल से कम होगी बाल मज़दूरी के क़ानून का ज़िक्र ऐसे अन्दाज़ से किया जा रहा है जैसे उन बच्चों का और खुद उनका इससे कोई ताल्लुक ही न हो। वह इस हकीकत को नज़र अंदाज़ ही नहीं कर रही हैं बल्कि सामने बैठे बच्चों को एक माइने में कानूनी मुजरिम भी ठहरा रही हैं। क्या आप अंदाज़ा लगा सकते हैं उस वक़्त बच्चे, अपने बारे में, अपनी मजबूरियों के बारे में और अपनी टीचर के बारे में क्या सोच रहे होंगे। क्या उन्हें यह एहसास होगा कि उनके आर्थिक-सामाजिक ढांचे उनकी इस स्थिति के लिए ज़िम्मेदार हैं या फिर कहीं वह अपने-आपको या अपने बड़ों को कुसूरवार मानते हुए शर्मिंदगी का शिकार तो नहीं होंगे।

सुरजीत जी के बारे में उनसे हुई बातचीत की बिना पर मैं यह अंदाज़ा लगा सकती हूँ कि उन्हें यह ख़याल नहीं आया होगा कि सामने बैठे बहुत से बच्चे मज़दूर हैं। लेकिन काफ़ी ऐसे टीचर भी हैं जो समझते हैं कि सिर्फ़ आदर्श की, इंसानियत की या फिर संविधान में लिखे आदर्शों की बात करना काफ़ी होगा। बच्चों को या समाज को आईना दिखाने और धिनौनी सच्चाई जैसे बाल मज़दूरी, फ़िरक़ापरस्ती या राज्य की ज़्यादती पर पर्दा पड़ा रहे तो भी ठीक है। आदर्श की मालूमात ही संघर्ष की चेतना जगाने के लिए क्या काफ़ी है? हां, ऐसे भी टीचर हैं जो ऐसे मुद्दों पर बात करने के लिए सक्षम ही नहीं हैं या फिर हम उन्हें इसके लिए तैयार नहीं कर पाए हैं।

## चैक करना-रखना

कक्षा के कहे-अनकहे दस्तूर-रिवाज का हिस्सा कॉपी चैक करना भी है। अगर आप यह सोच रहे हैं कि यह रिवायत बच्चों को उनका काम बेहतर करने में मदद करेगी तो ऐसा महसूस तो नहीं होता:

### 26.7.2014, कक्षा VII

ट: पहले कॉपी चैक करनी है मुझे।

(कुछ बच्चे जाकर टीचर के सामने टेबल पर रखते हैं, टीचर हाज़री के रजिस्टर पर बच्चों के नाम बोलकर उसके सामने निशान लगाती है कि किसने कॉपी दी और किसने नहीं।)

ट: अदनान कॉपी लाओ। तीनों कॉपी।

ब: मैम, तीनों तो लाए नहीं एक ही लाए हैं, सामाजिक-राजनीतिक की।

(बच्चा एक कॉपी रख देता है। टीचर अगले बच्चे का नाम पुकारती है)

ब: मैम, नहीं लाए।

ट: तुम्हारा पहले भी क्रॉस लगा हुआ है, आज भी क्रॉस लग गया है, अब देख लो।

(इसी प्रकार बाक़ी बच्चों के नाम लिए)

ट: देखो इस महीने में दो बार आपकी कॉपी चैक हो गई है। अगर एक बार और क्रॉस हो जाएंगे तो मैं उनके नाम प्रिंसिपल को दे दूंगी, फिर तुम जानो और प्रिंसिपल सर जानें।

(बच्चे उनकी टेबल के आसपास जमा हो जाते हैं)

ट: यहां क्यों जमा हो गए आप लोग?

(बच्चे अपनी सीट पर चले जाते हैं। दो बच्चे लड़ रहे थे। उनमें से एक खींचमतान के दौरान टेबल पर गिर जाता है। टीचर उसके पास जाकर उसकी पिटाई करती है।)

ट: बेग़ैरत, अपनी सीट से कैसे उठा? अपना रोज़ा तो ख़राब करते ही हैं, हमारा भी ख़राब कराते हैं। काम के न काज के ढाई सेर अनाज के, बोझ हैं। अगर फिर से अपनी सीट से उठा तो यहीं दफ़न कर दूंगी। किसी को



पता भी नहीं चलेगा कि किसने मारा। प्रिंसिपल को नाम देना है तुम्हारा तो मुझे।

ऊपर दिए गए अवलोकन के अलावा और भी कई झलकियां हैं जो यह दिखाती हैं कि कॉपी चैक करना एक मशीनी-सी रसम है जिसमें यह देखा जाता है कि जो मोती टीचर ने ब्लैक बोर्ड की नज़र किए हैं वह बच्चों की कॉपी में उतारे गए या नहीं। मैं मानती हूँ कि इसकी अपनी एहमियत है, क्योंकि बच्चों को मश्क की ज़रूरत होती है। लेकिन महीने भर के अवलोकन बताते हैं कि महीने के कई दिन इस दस्तूर की नज़र होते हैं। क्योंकि ज़्यादातर काम ब्लैक बोर्ड से या किताब से नक़ल करने से जुड़ा होता है तो चैक करने के दौरान नुक्ते या इमला सही करना, लेख की खूबसूरती पर टिप्पणी से ज़्यादा कुछ नहीं होता। यानी बच्चों को अवधारणा या मुद्दे को सीखने-समझने में कोई मदद नहीं मिलती है। हां, सी.सी.ई. (CCE, Continuous and Comprehensive Evaluation) के तहत इस रसम के भी नम्बर हैं, इसलिए इस रसम की ज़्यादा एहमियत बढ़ गई है बल्कि यह बच्चों के काम का और उसमें अपनी हिस्सेदारी का सुबूत इकट्ठा करने या फिर बच्चों पर क़ाबू रखने का अहम् रोल तो अदा करता ही है। वैसे भी जब बच्चे, “अपने हक़ में”, कॉपी पर न लिखकर बुरा करेंगे तो सज़ा जायज़ हो गई, जो बच्चों को भी कुछ हद तक कुबूल है।

मारपीट और हिंसा ऐसी रिवायत से जोड़ दिए गए हैं जिसका ताल्लुक बच्चों के पास-फ़ेल होने से है, इसलिए यह ज़्यादा जायज़ भी हो गई है। वैसे भी हिंसा से इन बच्चों का पैदाइशी रिश्ता है। तंगी और गुर्वत की गोद में पैदा होना ढांचों की छुपी हिंसा से दो-चार होना ही होता है। सामाजिक-आर्थिक ढांचों की मार सांस्कृतिक बंदिशों से जुड़ी होती है। स्कूल में टीचर का नकारना, गाली-गलौज, मारपीट और बेइज़्जती से दो चार होते हैं। इनमें सूफ़ियान जैसे अनेकों बच्चे हैं जो शायद पढ़ाई जारी नहीं रख पाएंगे। एक “अच्छे-इज़्ज़तदार-पढ़े लिखे” शहरी नहीं कहलाएंगे? जब हम एक शैक्षिक इदारे में बैठकर ऐसा नहीं कर पा रहे हैं यानी बच्चों को ही दोषी बता रहे हैं तो बाहरी समाज का क्या कहना। नीचे एक बच्चे का बेआवाज़ तमाचा है जो पता नहीं टीचर को महसूस भी हुआ था नहीं।

### 30.08.2013, कक्षा VII

अदनान बातें कर रहा था।

ट: इधर आओ खड़े हो जाओ यहां पर।

(आगे आकर खड़ा हो जाता है)

ट: हमारे वालदैन इतनी सुविधाएं देते हैं तो हमें भी तो उन सारी सुविधाओं को यूटिलाइज़ करना चाहिए। अच्छे नागरिक बनो good citizen! अच्छे शहरी बनो। क्या फ़ायदा है अच्छे शहरी होने का?

ब: हम बैठे-बैठे कमा लेंगे।

भई, मैं और आप अच्छे शहरी हैं, बैठे-बैठे, लिख-पढ़कर-पढ़ाकर या ऑफ़िस में काम करके कमा लेते हैं। खून-पसीना बहाकर कमाने वालों को तो ज़माने की दुत्कार ही मिलती है, कहां ‘अच्छे शहरी’ हुए? यह रिश्ता बच्चे ने अपने और अपने आसपास का जायज़ा लेने पर ही बनाया होगा।

हमारे यहां तंत्र और स्कूली निज़ाम टीचर को यह फुरसत ही कहां देता है कि वे बच्चों से बातें करें और उनकी ज़िन्दगी, दुख-दर्द-तकलीफ़ को समझें। हमारी वाइस-प्रिंसिपल जो बस तीन-चार साल में रिटायर होने वाली हैं आजकल प्राइमरी स्कूल देख रही हैं। दोपहर के वक़्त जब प्राइमरी स्कूल चलता है, वह अकसर ख़ाली होती हैं। यह वक़्त बच्चों से बात करने और उनके वालदैन की शिकायतें, परेशानियां समझने, दूर करने में खर्च करती हैं। आजकल मुझसे अपनी तकलीफ़ बांटती हैं। कहना है, “भई, बहुत बुरे हाल से बच्चे आ रहे हैं, हमारे यहां तो बच्चे 500 रुपये एनवल चार्ज देने के क़ाबिल नहीं हैं, आप प्रिंसिपल साहब से कहिए।” हाल में उन्होंने खुद बताया, चूँकि अब उनके पास बैठने, बात करने का वक़्त है, इस वजह से वह बच्चों के हालात से ज़्यादा वाक़िफ़ हो पाई हैं। टीचर की मशीनी ज़िन्दगी उसे यह वक़्त कहां मुहैया कराती है।

भई, पढ़ाने के अलावा भी हमारे टीचर हज़रात को अनेकों काम करने होते हैं, वाक़ई सांस भी लेने की फुरसत नहीं है। पढ़ाना-लिखाना, साथ में हर थोड़े दिन में टेस्ट-इम्तिहान। नम्बर बच्चों को बताना, रिकॉर्ड रखना, सी.वी.एस.ई.

भेजना। अपनी डायरी, हाज़िरी के रिकॉर्ड। ऊपर से हमारे यहां ऑफिस स्टाफ़ की शदीद कमी है, इसलिए यह ज़िम्मेदारी भी टीचर हज़रात पर आ गई है। हमारे ज़्यादातर बच्चों की माली हालत इस तरह की नहीं है कि वे स्कूल की मामूली फ़ीस भी दे पाएं। उनसे फ़ीस वसूलने, रसीद देने और स्कूल अकाउन्ट में जमा करवाने में काफ़ी वक़्त लग जाता है। यह मामूली-सी फ़ीस लेना ज़रूरी है वरना टीचर की तनखा का 5 फ़ीसदी हिस्सा जो इन्तज़ामिया के सुपर्द है कैसे जमा होगा। इनके अलावा स्कॉलरशिप या फण्ड का पैसा जो बच्चों के लिए आता है उसका वितरण भी असातज़ा ही की ज़िम्मेदारी है। यह पैसा मैरिट या क्लास के नतीजे के हिसाब और हाज़िरी के हिसाब से बच्चों में बंटता है। इसके बंटने-बंटाने, वालदेन को समझाने में कि किसी बच्चे को कम किसी जो ज़्यादा किस हिसाब से मिला है, कई दिन लग जाते हैं। इन सब चीज़ों के बीच स्कूल के सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए वक़्त निकालना, सर्वे, इलैक्शन ड्यूटी वगैरा, क्या कुछ नहीं करते हमारे असातज़ा।

यह ज़रूर है कि काबू करने नियमित करने, सांचे में डालने-ढालने का सिलसिला, सीढ़ीनुमा तंत्र जहां सत्ता भी सीढ़ियों के हिसाब से बंटती है ऊपर से ही शुरू होता है। हम टीचर को सोचने-समझने की न ही शिक्षा देते हैं और न ही फुरसत। बस चाहते हैं कि वह हमारा हुक्म स्कूली दस्तूर, रिवाज की शकल में बजाते रहें। भई, ख्वाहिश तो सत्ता की कुर्सी पर बैठे लोगों की टीचर को मज़दूर बनाने की ही जान पड़ती है। तंत्र के शिकंजे में मैं भी फंसी हूं, स्टाफ़ कम होने की वजह से असातज़ा पर काम लादने की मुजरिम तो मैं भी हूं। काबू करने का सिलसिला इन्तज़ामिया, शिक्षा मकहमे और टीचर से होता हुआ जब आगे बढ़ता है तो बच्चों पर ही फंदा कसता है। छोटी उम्र में अपने-आपको बेबस महसूस कर रहे बच्चे धीरे-धीरे जब बड़े होते हैं तो फंदे को ढील देने की पुरज़ोर कोशिश करते हैं। जी हां, शरारत करके, तोड़-फोड़ करके, मज़े लूटकर, शिकायत भी करके।

हाल में मैं स्कूल पहुंची तो देखा कि क्लासें लगी हुई हैं। तीन बच्चे बाहर चबूतरे पर बैठे अपनी कॉपी पर एक जुमले से पन्ने पर पन्ने भर रहे थे। जुमला था, 'आइन्दा ऐसी ग़लती नहीं होगी।' पूछने पर बताया कि वाइस-प्रिंसिपल मैडम ने सज़ा दी है, दीवार फांदकर भागते हुए पकड़े गए थे। मैंने पूछा, 'भई भाग ही क्यों रहे थे। इस पर कंखियों से आसपास देखा, बगैर, नज़रें ऊपर किए, लिखते-लिखते सपाट-सी आवाज़ में कहा, "वह एक खेल का पीरियड था, एक लाइब्रेरी का और अस्मा मैम का आखिरी होता है वह आई नहीं थीं"। सही बात है, आजकल किसी वजह से खेल और लाइब्रेरी का पीरियड लग नहीं रहा है, स्कूल में रुककर भी क्या करते। आवाज़ शिकायत भरी नहीं बल्कि रंजिश भरी थी। शायद इशारा-सा था कि आप ही बताएं इंसाफ़ की बात क्या है?

### मेरा मज़हब, उसका मज़हब

कक्षा या स्कूल में चल रही बातों, किस्सों, रिवायतों वगैरा को एक किस्त में समेटना तो गोया ऐसा ही दावा है जैसे समुद्र को प्याले में समेटने का हो लेकिन मैं तो बस बूंदों की बनावट और चाल की बात करने की जुरत कर रही हूं। जहां तक बच्चों को बस में करने का ताल्लुक है मज़हब से दलील देना भी एक पैतरे के रूप में उभरता है। यह तो हम जानते ही हैं कि मज़हब बच्चों और बड़ों की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से जुड़ा है बल्कि यूं भी कहा जा सकता है कि यह कई एक आयामों में से एक है जो उनकी अपने-आपसे और दुनिया से पहचान कराता है। यह पहचान धीरे-धीरे इन्हें इससे जुड़ी एहमित, हाशिएबंदी, उनकी तरफ़ उठ रही नज़रों और नज़रियों से दो-चार करवाती हैं। अक्सर मौजूदा राजनैतिक-सामाजिक हालात नज़रों, नज़रियों को प्रभावित करते हैं जो कि मज़हबी पहचान पर असरअन्दाज़ होते हैं। हमारी दिनचर्या का, नाम का, बदनामी का, दस्तूर-रिवाज, महरूमि का, मजबूरी का जब मज़हब हिस्सा है तो हमारी बातचीत और कक्षा का भी हिस्सा बन ही जाता है।

अपने मज़हब और रिवायतों के मुकाबले में बढ़ाने-चढ़ाने बेहतर बताने के सिलसिले को कुबूल-सा कर लिया गया है। लगता है सभी अच्छी रिवायतों की शुरुआत यहीं से हुई है। यह ऐसा 'सच' है जो सुबूत से परे या ऊपर है। बस कह देना काफ़ी हैं। जैसे:



### 10.7.13, कक्षा VII

ट: जैसे आपने श्री ईडिअट्स पिक्चर (Three Idiots) देखी होगी, देखी है?

ब: येस मैम।

ट: उसमें दिखाते हैं कि लड़की हुई तो डॉक्टर और बेटा हुआ तो इंजीनियर बनेगा। ये पहला मज़हब है जहां औरत और मर्द को समान देखते हैं। इसके बाद विश्व में और जगह भी यह हुआ है।

यानी अपना मज़हब तनकीदी नुकतए-नज़र और सवालों के दायरे में भी नहीं है। अगर कुछ गुफ्तगू मुमकिन भी होती है तो मज़हब के दायरे के भीतर ही। जैसे:

### 11.2.2014, कक्षा IX

ब1: (दूसरे बच्चे की तरफ़ इशारा करते हुए) यह स्मोक कर रहा था।

ब2: सिगरेट पीना हराम है।

ट: हराम हर वह चीज़ है जो जिस्म और ज़हन को नुक़सान पहुंचाए।

यह ज़रूर है कि हराम लफ़्ज़ के माइने हमारी अर्शी मैडम ने बयान कर दिए, लेकिन मज़हब के दायरे के भीतर ही। इस तरह की बातें सामाजिक विज्ञान के दायरे तक नहीं पहुंचतीं। बग़ैर किसी के मज़हबी ख़्यालात को ठेस पहुंचाए हुए यह बात भी हो सकती थी कि क्या हलाल-हराम की समझ एक ही मज़हब के मानने वालों में भी फ़र्क है लेकिन मज़हब और सामाजिक-राजनीतिक जिन्दगी के दायरे न सिर्फ़ एक-दूसरे से जुदा हैं बल्कि दूर-दूर भी हैं।

### 23.07.2014, कक्षा IX

ट: अगर देश को ज़रूरत हो तो अंतर्राष्ट्रीय बैंक के पास जाते हैं। कोई नुक़सान हो तो ये ग़रीब देशों की मदद करता है। उन्हें ब्याज पर रुपये देता है।

ब: मुसलमानों के लिए ब्याज हराम है।

ट: ब्याज हराम यूं था क्योंकि लोग पहले ज़्यादा से ज़्यादा वसूलते थे और ग़लत कामों में लगाते थे। लेकिन बैंकों में जो होता है वो और अच्छे कामों में लगाते हैं। जैसे इर्रीगेशन (Irrigation)। अब 25 रुपये का सामान ख़रीदा वह 30 में बिका तो वो हराम नहीं है लेकिन अगर किसी की ज़मीन-घर ले लिया तो वह हराम है।

यहां पर अर्शी मैडम यह समझाने में लगी हैं कि किस तरह ब्याज जिसे मज़हबी-तौर पर हराम करार दे दिया गया है मौजूदा शक़ल में हलाल है। कम से कम इससे यह तो ज़ाहिर हुआ कि मज़हबी तसव्युरात को वक़्त और हालात के साथ जोड़कर देखने की ज़रूरत है। यहां अर्शी मैडम बताने की कोशिश कर रही हैं कि बैंक अगर हमें तिजारत में हिस्सेदार मानते हुए, मुनाफ़े में से कुछ देता है तब वह हराम नहीं है क्योंकि वह हमारा हक़ हुआ। जहां यह बहस कुछ हद तक सही है वहीं यह भी देखने-समझने की ज़रूरत है कि अंतर्राष्ट्रीय बैंक ग़रीब देशों का खून चूसने का ही काम करती है, उस ऐतबार से तो ब्याज हराम ही हुआ। आम बैंक भी किसे लोन देती हैं और किसे नहीं यह भी न इंसाफ़ के तराजू में रखा जा सकता है न ही बराबरी के। अगर इन बारीकियों को समझा-परखा जाए तो मज़हब और सामाजिक विज्ञान के दायरे कहीं टकरा जाएंगे या कम से कम मज़हब की समझ सफ़ेद-काले, सही-ग़लत के इशारों से निकलकर एक पेचीदगी तो इख़्तियार करेगी जहां सुरमई रंगत में काले-सफ़ेद की पहचान मुश्किल होगी।

### 20.07.2013

ट: ह्यूमन राइट्स कमीशन के नियम तो तालिबान भी नहीं मानते वो भी बहुत रोकते हैं।

ब: वो अच्छे नहीं हैं।

ट: नहीं, कहां अच्छे हैं। औरतों पर इतनी पाबंदी लगाते हैं।

ब: नबी को नहीं मानते, कुरान को भी।

ट: वो औरतों को कहते हैं, घर में रहें, तालीम न लें, ये कौनसा धर्म कहता है? हमें इस पर खुलकर बात करनी चाहिए। तालीबान इस्लाम नहीं है। कहां लिखा है कि जॉब न करें। घर के मसले सुलझाने होते थे, इसलिए कहा था। ये भी कौनसा क़ानून मानते हैं। इंसान की जान लेने का हक़ किसने दिया? इस्लाम तो यह नहीं कहता।

## 17.2.2014, कक्षा VIII, हाशियेकरण से निपटारा

ट: सिख इंदिरा गांधी से खालिस्तान की मांग कर रहे थे। जैसे मुस्लिम्स को पार्टीशन (Partition) के बाद पाकिस्तान मिला, वैसे ही सिख अपने राज्य की मांग करने लगे। पूरे दस साल तक ऐसा हुआ। इंदिरा गांधी ने स्ट्रिक्ट एक्शन (Strict Action) लिया इसके खिलाफ। अमृतसर के गुरुद्वारे में हथियार भी जमा किए गए। आतंकवादी जैसे करते हैं न, लोगों को मारते हैं, काटते हैं, वैसे सिख भी करने लगे थे। उसके बाद '84' के दंगे हुए अभी कहते हैं कि उसकी जांच-पड़ताल की जाए।

अगर आप अर्शी मैडम और सुरजीत मैडम की बातचीत को देखें तो एक अहम फर्क दिखाई देता है। अर्शी मैडम यह बताने की कोशिश कर रही हैं कि इस्लाम मज़हब के पैग़ाम में और उसके मानने वालों में, जिनमें चंद दहशतगर्दी का साथ देने वाले भी शामिल हो सकते हैं, उनमें फर्क है। यानी उनकी सोच, यकीन और पैग़ाम में फर्क है। जबकि सीखने-सिखाने में यह गहराई भी मुमकिन थी कि बहस हो पाती कि हम आखिर दहशतगर्द किसे मान रहे हैं? क्या यह एकरूपीय समूह है? दहशतगर्दी की वजह क्या हैं? कभी आज़ादी के खाहिशमंद, देश प्रेम की आग सीने में जलाए भगत सिंह जैसे लोगों को भी दहशतगर्द कहा गया है, आज कभी कश्मीरी मुसलमान दहशतगर्द कहलाते हैं, कभी ग़रीब मुसलमान। पर्दों के पीछे छुपी सच्चाई जानना जटिल तो है, फिर भी दहशत के विभिन्न रंग-रूप की वजह समझने जानने में कुछ तो मदद मिलेगी। खैर, यह अलग बात है। मैं आपकी तवज्जह जिस खतरनाक पहलू की तरफ़ दिलाना चाहती हूँ वह है कि सरलता से हमारी सुरजीत मैडम ने सिख मज़हब के मानने वालों को एक समूह, एकरूप जताकर दहशतगर्दी से जोड़ दिया है। साथ ही लगता है कि मज़हब के पैग़ाम और इसके मानने वालों की समझ में कोई फर्क ही नहीं है। गहरे राजनैतिक-आर्थिक मुद्दों को नज़रअंदाज़ करते हुए पूरे समुदाय को गुनहगार करार दे दिया है। 'आतंकवादी' और 'सिख' का ताल्लुक बस कुदरती-सा ही दर्शा दिया है। वैसे भी पूरे सिख समुदाय को हाशियेबंदी से जोड़ देना कहां तक दुरुस्त है। किताब में न इस उदाहरण का जिक्र है और न ही इस ग़लत उदाहरण की यहां ज़रूरत थी।

शुक्र है कुछ बच्चों ने तो अनसुनी की होगी, कुछ ने ध्यान नहीं दिया होगा, कई ने नज़रअंदाज़ किया होगा, कुछ ने अपने तज़ुर्बों के ऐतबार से परखा-तोला होगा और समझने की कोशिश की हो। अगर सिर्फ़ बेआवाज़-बेबस बंदी होते तो खतरनाक नतीजे हो सकते थे। कभी तो लगता है कि या तो हम शिक्षा संस्थानों में ताले लगा दें जहां हम एक शिक्षक की सत्ता और उससे जुड़ी आज़ादी के आगे ढेरों बच्चों को कैद करके बिठा देते हैं कि जो चाहे खिलवाड़ इनकी सोच यकीन और ज़हनियत के साथ कर लो या फिर हम अपने शिक्षक तैयार करने वाले कार्यक्रमों को समझें और उनको बदलें। आपने देखा कि काबू करने में जिस्म पर ही नहीं बल्कि आत्मा और चेतना पर भी काबू करना शामिल है। इस किस्त में आकलन, जो काबू करने का अहम दस्तूर है, पर बातचीत नहीं हो पाई है। आइन्दा करने की कोशिश होगी। ◆

(मैं बहुत शुक्रगुज़ार हूँ- कविता की जो अब केन्द्रीय विद्यालय नासिक में पढ़ाती हैं और मनीषा इक्का की जिन्होंने मेरे लिए यह तफ़सील जमा की। दोनों ही ने जामिया मिलिया से एम.ए. एजुकेशन किया है।)